ज़ैनब (स०) सी बहन देखी न अब्बास (अ०) सा भाई

मुफ़क्किरे इस्लाम डाक्टर मौलाना सै० कल्बे सादिक़ साहब

हक़ीक़त ये है कि इन्सान के इतिहास में भाइयों के लिए नाज़ के क़ाबिल बहनें भी गुज़री हैं और गर्वपूँजी भाई भी लेकिन जिस तरह इमाम हुसैन[अ०] ने आशूर से पहले रात को खुद फ़रमाया किः

"जैसे साथी मुझे मिले किसी को न मिले" इसी तरह ये भी एक हक़ीक़त है कि दुनिया में किसी को न ज़ैनब[अ०] की ऐसी बहन मिली, न अब्बास[अ०] का ऐसा भाई।

ज़ैनब[अ०] को हुसैन[अ०] से वही लगाव है जो खुद हुसैन[अ०] को रसूल[स०] से था। जिस तरह हुसैन[अ०] ने अपनी क़ुर्बानी देकर रसूल[स०] और रसूल[स०] के मिशन को ज़िन्दा कर दिया, उसी तरह हुसैन[अ०] की इस बहन ने कूफ़ा और शाम के भरे बाज़ारों और सजे-बने दरबारों में अपने खुतबों (भाषणों) के ज़रिये हुसैन[अ०] और हुसैनी मिशन को ज़िन्दा कर दिया और अब्बास[अ०] इब्ने अली[अ०] ने अपनी तारीख़ी अलमदारी, बेमिसाल बहादुरी, नाक़ाबिले तसव्वुर वफ़ा और इख़लास, के ज़रिये अली[अ०] की चाह की लाज रख ली।

अल्लाह ने हर इन्सान की तरह इस गुनाहगार को भी दो आँखें दी हैं। इस साल मैंने इन दो आँखों से दो मन्ज़र देखे। एक का ताल्लुक़ हुसैन[अ०] की बहन से है एक का ताल्लुक़ हुसैन[अ०] के भाई और अलमदार से। मैंने इस साल अमरीका के सफ़र में एक सख़्त मुश्किल से दोचार होने पर ये नज़र (मनौती) मानी थी कि अल्लाह ने इस मुश्किल को हल कर दिया तो मैं शाम में हमज़्तुल हुसैन (जनाब ज़ैनब) की ज़ियारत करूँगा। करीम रब ने अपने फ़ज़्लो करम से उसके सदक़े मेरी मुश्किल हल कर दी। इसलिए मैं अप्रैल की 10 तारीख़ को नज़्र के पूरे करने के लिए शाम रवाना हो गया।

मैं सन् 65 में शाम गया था। उस वक़्त नज़रें न थीं और एतेबार वाली निगाह न थी। अब सूरते हाल दूसरी थी अब मैं हालात को देख भी सकता था और हालात का जाएज़ा भी कर सकता था।

आप हज़रात को मालूम है कि शाम वह मुल्क है जिसकी पहली ईंट अहलेबैत की दुश्मनी पर रखी गई थी। ये इस्लामी इतिहास के ख़बीस तरीन हुक्मरानों का मुल्क था। यहाँ के मिंबरों से रसूल के अहलेबैत[अ०] को बुरा-भला कहा जाता था और उसमें कितनी शिद्दत थी उसका अन्दाज़ा आप इस तारीख़ी वाक़िए से कर सकते हैं:-

हज़रत अमीरुलमोमिनीन[अ०] की ज़ियारत के बाद हज़रत अब्दुल्लाह इब्ने अब्बास शाम तशरीफ़ ले गये। अमीरे शाम इब्ने अब्बास को अपना अज़ीम ख़ज़ाना दिखाने ले गए जो सोने-चाँदी के सिक्कों, हीरे-जवाहरात और क़ीमती चीज़ों से पटा पड़ा था। अमीरे शाम ने अली[अ०] के शार्गिद को ख़रीदना चाहा और कहा इसमें जो पसन्द आए, उठा लो वो तुम्हारा है। इब्ने अब्बास ने इस हराम माल में हाथ भी लगाना पसन्द न किया। तो अमीरे शाम ने कहा तुम जो चाहो मैं तुम्हें दे दूँगा। तुम्हें मेरी सख़ावत (दानवीरता) का अन्दाज़ा नहीं है।

इब्ने अब्बास ने कहा "जो माँगू दे दोगे?" अमीरे शाम ने इक़रार किया तो कहा, "मैं तुम से एक चीज़ माँगता हूँ। मुझे हीरे-जवाहरात नहीं चाहिएं। मिंबरों से अली[अ०] पर तबर्रा (बुरा) न करो।" अमीर का चेहरा लाल हो गया और कहा "ये नहीं हो सकता। ये तो मेरे दीन (धर्म) का हिस्सा है।"

आप ग़ौर करें वह दीन कैसा दीन होगा जिसमें "कुल्ले ईमान" (पूर्ण-विश्वास) को बुरा-भला कहना ईमान का हिस्सा बना दिया है। बनी उमैय्या के इन ख़बीस बादशाहों के बाद शाम बनी अब्बास की हुकूमत में आ गया जो अहलेबैत^अ॰ की दुश्मनी में बनी उमैय्या से भी आगे निकल गये थे। मुख़तसर ये कि ये शाम वही है जहाँ सैकड़ों साल बराबर वह हुकूमतें रहीं, अहलेबैत^अ॰ की दुश्मनी जिनके ईमान का हिस्सा था।

मगर ये ज़ैनब की मज़लूमाना बहादुरी का मोजिज़ा नहीं तो और क्या है कि सारी दुनिया में घूमने वाले इस अहलेबैत के आशिक़ ने अपनी आँखों से ये मन्ज़र देखा कि उस वक़्त जबकि सारी दुनिया में नजदियत और वहाबियत व सऊदियत के असर सामने आ रहे है और ख़ास तौर पर कोई नाम का मुस्लिम मुल्क (सिवाए ईरान) ऐसा नहीं बचा है जहाँ वहाबियत की काली घटाएं न छायी हों। शाम वही शाम जिसकी बुनियाद ही अहलेबैत की दुश्मनी पर रखी गई थी। सिर्फ़ यही एक शाम वह मुल्क है जहाँ वहाबियत के दौर का नामो निशान नहीं है। अक्सरियत यहाँ की भी सुन्नी है लेकिन सुन्नी है, वहाबी नहीं। ये सुन्नी भी अहलेबैत के मतवाले और दीवाने हैं। पूरे मुल्क में कोई अज़ान ऐसी नहीं होती जिसका ख़ातमा रसूल^स॰ और रसूल के अहलेबैत^अ॰ पर दुरूद व सलाम के बिना हो जाए। वह शाम जहाँ ज़ैनब^स॰ नंगे सर और रस्सियों में जकड़ी हुई थीं, इसी शाम में दमिश्क़ (Damascus) के क़रीब एक पूरा टाउनशिप आबाद है जिसका नाम ही "अस्सैय्यिदा ज़ैनब" है। अल्लाहु अक्बर! जिस शाम में ये काएनात की शहज़ादी (अल्लाह की पनाह) बाँदी की तरह लायी गयीं थीं, आज उसी शाम में "ज़ैनब अस्सैय्यिदा" के नाम से जानी मानी जाती है और यक़ीनन सारी दुनिया में ये अकेला रौज़ा है जहाँ इत्तेहादे इस्लामी का ये रूह परवर (पालने वाला) मन्ज़र दिखायी देता है कि इसके एक मीनार से अहलेसुन्नत भाइयों की अज़ान होती है तो दूसरे मीनार से शिया हज़रात की अज़ान होती है, जहाँ रौज़े की इमारत के एक तरफ़ सुन्नी हज़रात की नमाज़ जमाअत होती है और दूसरी तरफ शिया हज़रात की नमाज़ जमाअत होती है। रौज़े के अन्दर सुन्नी और शिया ज़ाएरीन (दर्शनार्थियों) की भीड़ होती है रौज़े में जो जलाल व जमाल (तेज सौन्दर्य) है वह देखने वाला है।

शुरु में मैं ने हम्ज़तुल हुसैन का ज़िक्र किया था, इसलिए मुख़तसर सा तज़किरा इसका भी कर दूँ। दमिश्क़ से तीन सौ साठ किलोमीटर के फ़ासले पर एक मशहूर शहर हलब है। बड़ा ख़ूबसूरत और हसीन शहर है। इसमें एक शानदार मस्जिद 'मस्जिदुल हुसैन' के नाम से मारूफ़ है।

एक रिवायत की बुनियाद पर जिस वक़्त सरकार सैय्यिदुश्शोहदा^अ॰ (इमाम हुसैन^अ॰) का मुबारक सर इस शहर में पहुँचा तो किसी शख़्स (शायद एक राहिब ने) किसी न किसी सूरत में इस सर को हासिल कर लिया। इज़्ज़त व एहतेराम से उसे लाया। मज़लूम के सर पर नौहा व मातम किया, फिर एक पत्थर पर उस सर को गुस्ल दिया और ख़ून वग़ैरा साफ़ किया। जिस पत्थर पर इस मुबारक सर को गुस्ल दिया था उस पत्थर ने उस ख़ून को अपने दामन में इस तरह महफ़ूज़ कर लिया था, जैसे इस मज़लूम के बुज़ुर्ग दादा (पितामह) हज़रत इब्राहीम^अ॰ के क़दम के निशान को काबा की तामीर के वक़्त "मक़ामे इब्राहीम" ने महफ़ूज़ कर लिया था। ये पत्थर तक़रीबन सवा दो फीट चौड़ा और कम से कम एक फीट मोटा होगा, ऊपर की सतह पर आधा हिस्सा कुछ ऊँचा है और आधा हिस्सा कुछ नीचा है। इस निचजे हिस्से में आज तक उस ख़ून का रंग महफ़ूज़ है। ख़ून का रंग गहरा लाल नहीं है बल्कि वैसा ही है जैसा कि पानी में ख़ून का रंग होता है। कौन पत्थरदिल इन्सान होगा जिसका दिल इस पत्थर को देख कर पानी न हो जाए। ख़ुदावन्दे करीम आप हज़रात को भी उस पाक मक़ाम की ज़ियारत का शरफ़ प्रदान फ़रमाए।

बहरहाल, आज का शाम उमवी और अब्बासी शाम से बिल्कुल अलग है। अमीरे शाम और यज़ीद की क़ब्रें गुमनाम हैं। असल में इन क़ब्रों के निशान भी फ़र्ज़ी हैं, इस लिए कि सच्ची तारीख़ी हक़ीक़त ये है कि बनी अब्बास के इन्क़ेलाब के साथ ही सभी उमवी बादशाहों के क़ब्रों को खोद डाला गया था और जो

कुछ हड्डियाँ मिली थीं उनको आग में जलाकर राख कर दिया गया था।

मगर उसी शाम में हज़रत रुक़ैय्या बिन्ते (सुपुत्री) हुसैन का शानदार रौज़ा, हज़रत सकीना बिन्ते हुसैन का रौज़ा, हज़रत उम्मे कुलसूम बिन्ते अली[अ॰] का रौज़ा, अहलेबैत[अ॰] के चाहने वाले और रसूल[स॰] के मोअज़्ज़िन (अज़ान देने वाले) हज़रत बिलाल हबशी[रज़ि॰] का रौज़ा दमिश्क़ से थोड़ी दूर पर, मरजे अज़्रद में शहीदे मवद्दत हज़रत हजर[रज़ि॰] बिन अदी का रौज़ा, फिर रिक़ा में हज़रत अम्मार बिन यासिर[रज़ि॰] वग़ैरा का शानदार रौज़ा। ये रौज़े इस बात का एलान कर रहे हैं कि अब शाम पर अहलेबैत[अ॰] की हुकूमत है या अहलेबैत[अ॰] के सच्चे साथी और शहीदों के चाहने वालों की। ये वह हुसैनी जीत है जो शरीकतुल हुसैन हज़रत ज़ैनब उलिया मक़ाम[अ॰] की क़ुर्बानियों का नतीजा है। ज़ैनब[अ॰] ने ख़ुदा के रास्ते में अपनी इज़्ज़त व हुरमत तक (देखने में) क़ुर्बान कर दी थी तो अल्लाह इस इज़्ज़त व हुरमत का क़यामत तक के लिए हिफ़ाज़त करने वाला बन गया। वह शहज़ादी जो शाम के बाज़ार में मासूम बच्चों के लिए एक-एक से पानी माँग रही थी उस शहज़ादी के दरबार में मुल्कों के बादशाह भिखारियों की तरह दामन फैलाए खड़े रहते हैं।

बहन के बाद अब कुछ अलफ़ाज़ भाई के बारे में। क़ुरआन के हिसाब से अल्लाह ने हिदायत के मन्सब के लिए नसलों को चुना है, उसी तरह मौलाए काएनात (सृष्टि-स्वामी) हज़रत अली बिन अबी तालिब[अ॰] ने अपने बेटे की मदद बल्कि इस्लाम की मदद के लिए भी नस्ल को देखा और हज़रत उम्मुल बनीन को चुना। उस उम्मुल बनीन का बेटा अब्बास बिन अली[अ॰] ताजदारे (मुकुटधारी) वफ़ा, सक़्क़ा-ए-सकीना, सैदानियों का सहारा, इस्लामी फ़ौज का अलमदार (ध्वज-वाहक) हुसैन[अ॰] के लिए वही हैसियत रखता था जो रसूल[स॰] के लिए अली[अ॰] रखते थे।

मैं 1980[ई॰] तक मौला के रौज़े पर बराबर हाज़री देता रहता था। फिर सद्दामी दौर में मेरा जाना बन्द हो गया जो आज तक बन्द है और जब तक ये मलऊन वहाँ है, शायद मैं ज़ियारत से महरूम रहूँगा।

बनी हाशिम के चाँद (हज़रत अब्बास) के पाक हरम में कभी-कभी ये बात मेरे कानों तक पहुँचती कि तहख़ाने में जहाँ पाक क़ब्र है उसके बाएं या बिल्कुल क़रीब फ़ुरात की नहर अभी तक बह रही है लेकिन मैंने बदक़िस्मती से अभी उस पर संजीदगी से ग़ौर नहीं किया था।

लेकिन इस साल मैंने एक वीडियो फ़िल्म के ज़रिये से ये हैरतनाक मन्ज़र अपनी आँखों से देखा कि एक इस्लामी मुल्क की ऐसी शख़सियत की फ़रमाइश पर, जो उस वक़्त वज़ारते उज़्मा (प्रधानमन्त्री) के मन्सब पर फ़ाएज़ थी, इस सरदाब (तहख़ाने) का दरवाज़ा खोला गया था जहाँ सक़्क़ा-ए-सकीना की मुबारक क़ब्र है।

इस वीडियो फ़िल्म के ज़रिये ये मन्ज़र मैंने अपनी आँखों से देखा कि फ़ुरात नहर सक़्क़ा-ए-सकीना के क़दमों से बिल्कुल मिली हुई तेज़ी से बह रही है। पानी की गहराई तो शायद एक गज़ से ज़्यादा न हो मगर बहाव बहुत तेज़ था इस लिए जो लोग इस नहर को पार करने की हिम्मत कर सके वह भी ऊपर से लटके हुए रस्सों के सहारे नहर को पार करके पाक क़ब्र तक पहुँचे।

यहाँ ग़ौर करने वाली बात ये है कि हुसैनी लश्कर का अलमदार तो इब्ने ज़ियाद के लश्कर को ढकेलता हुआ नहर से बहुत दूर चला गया था। और ये भी एक हक़ीक़त है कि सरकारे वफ़ा को चौथे इमाम नें वहीं पर दफ़न किया जहाँ लाश मिली थी। जब ये दोनों बातें सही हैं तो क़ब्र नहर के बिल्कुल ही किनारे आज कैसे दिखायी दे रही है।

मेरी समझ में तो इसके सिवा कुछ नहीं आता कि क़ब्र को तो नहर से दूर बनी थी मगर फ़ुरात नहर ने शर्मिन्दगी की वजह से ख़ुद अपने आपको हमेशा-हमेशा के लिए इब्ने अली के क़दमों में लाकर डाल दिया है।



(उर्दू से अनुवाद)